स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास—श्रीधर ९, वार—क्षीरोदशायी, शनिवार, ३२ आषाढ़, सम्वत् २०२८, १७ जुलाई १९७१ | संख्या २

जुलाई १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

इन्द्रकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।२७।४—१३)

इन्द्र उवाच—

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥

इन्द्रने कहा—हे देव ! तुम्हारा स्वरूप अपरिवर्तनशील है, प्रचुर ज्ञानमय है, रजः और तमः गुणके सम्बन्धसे रहित है तथा विशुद्ध सत्त्वमय है। अज्ञानके द्वारा उत्पन्न, मायामय यह गुण-प्रवाह अर्थात् संसार तुममें नहीं है ॥ ४ ॥

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ।
तथापि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥

हे ईश ! तुममें जब अज्ञान और उसके द्वारा उत्पन्न देह-सम्बन्ध नहीं है, तब तुममें देह-सम्बन्धभूत एवं अन्य देहोत्पत्तिके मूल-कारणस्वरूप अज्ञानीके चिह्न लोभादि दोषोंकी संभावना कैसे हो सकती है ? तथापि आप धर्मरक्षा एवं दुष्ट-दमन करनेके लिए दण्ड धारण किया करते हैं ॥ ५ ॥

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

जगतके पिता, उपदेष्टा, नियन्ता, कालरूपी आप शासन भार ग्रहण कर स्वतन्त्र-ईश्वराभिमानी व्यक्तियोंका गर्व-विनाश कर उनके मंगल करनेकी इच्छासे अपने लीलावतार समूहोंको इस जगतमें प्रकट किया करते हैं ॥ ६ ॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ।
हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥

मुझ जैसे मूढ़ व्यक्ति जो सभी अपनेको स्वतन्त्र ईश्वर समझकर अभिमान करते हैं, वे भयकालमें भी आपको निर्भय देखकर अपना अभिमान त्याग कर निरहंकारपूर्वक भक्तभाव ग्रहण करते हैं । अतएव आपकी यह गोवर्द्धन-धारण लीला मुझ जैसे दुष्ट प्रकृतिके व्यक्तिके लिए शिक्षा स्वरूप है ॥ ७ ॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ।
क्षन्तुं प्रभोऽर्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! मैं आपका प्रभाव अवगत नहीं हूँ, अतएव अपने क्षुद्र ऐश्वर्य गर्वमें मदमत्त होकर आपके चरणोंमें अपराध कर बैठा । आप इस अज्ञानजनित दोष क्षमा करनेमें समर्थ हैं । हे ईश ! पुनः ऐसी दुर्मति मेरी न होवे, ऐसी कृपा करें ॥ ८ ॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयम्भराणामुरुभारजन्मनाम् ।
चमूपतिनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥

हे देव ! अधोक्षज ! गुरुभारजनक एवं पृथिवीके भारस्वरूप दैत्यसेनापतियोंके विनाश एवं दासस्वरूप भक्तोंका मंगल-विधान करनेके लिए ही इस मर्त्यधाममें आपका यह श्रीकृष्णवरूप अवतार हुआ है । अतएव आप मुझ सेवकका अपराध क्षमा करें ॥ ९ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥

आप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार नमकार है । आप सर्वान्तर्यामी, सर्व-व्यापक, जगन्निवास, वासुदेव, सात्वतोंके अधिपति हैं । आपको नमस्कार है ॥ १० ॥

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्त्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥

आपने अपने भक्तोंकी इच्छासे अपनी श्रीमूर्त्ति प्रपञ्चमें प्रकटित करते हैं । तथापि आपकी श्रीमूर्त्ति विशुद्ध ज्ञानमय है । अचिन्त्य शक्तिद्वारा आप जगतके निमित्त एवं उपादान कारण होनेके कारण सर्वरूप हैं, सभीके मूल कारण एवं सर्वभूतोंके आत्मस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है ॥ ११ ॥

मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! आप मेरे यज्ञका निवारण करने पर मैंने अत्यन्त क्रोधान्वित और अहंकृत होकर गोष्ठ-विनाश करने के लिए तीव्र वृष्टि और वायु द्वारा ऐसा कार्य किया था । १२ ॥

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥

हे ईश ! आपने मेरे प्रयास एवं गर्वका नाश कर मेरे प्रति अनुग्रह ही किया है। हे ईश्वर ! इस समय मैं ईश्वर, गुरु एवं आत्मरूपी आपके शरणागत हुआ ॥ १३ ॥

॥ इति इन्द्रस्य श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति इन्द्रका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

गोपियोंका सौभाग्य

गोपिका अति आनन्द भरी ।
माखन दधि हरि खात प्रेम सौं, निरखति नारि खरी ॥
कर लै लै मुख परस करावत उपमा बढ़ी सुभाइ ।
मानौ कंज मिलत ससि कौ लै सुधा कौर कर आई ॥
जा कारन सिव ध्यान लगावत, सेस सहस मुख गावत ।
सोइ सूर प्रगट ब्रज भीतर, राधा मनै चुरावत ॥

वैष्णव

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

सभी कार्योंके प्रारम्भमें मंगलाचरण विहित है। इसलिये जो व्यक्ति भगवानकी कथा आलोचना करते हैं—जो लोग भगवान्‌में सर्व प्रकारसे निर्भर हैं, उनके पादपद्मोंमें शरण-ग्रहण करना ही हमारे लिये सर्वप्रकारके मंगलाचरणोंका आकर (मूलस्रोत) स्वरूप है। उन वैष्णवोंको हम नमस्कार करते हैं। वे वैष्णव लोग पतित-पावन हैं, मैं पतित हूँ, उनके शरणापन्न होने पर वे हमारी रक्षा करेंगे। मैं अभाव-ग्रस्त जीव हूँ—नाना प्रकारके अभावद्वारा पेषित हो रहा हूँ। वैष्णव लोग कल्पतरु हैं। वे सर्वाभीष्ट पूरण करने में समर्थ हैं। वे यदि कृपण होते, तो मेरा अभीष्ट पूर्ण नहीं होता। किन्तु भगवानने उन्हें सबकी अपेक्षा अधिक वदान्य कर जगतमें प्रेरण किया है। वे सबकी अपेक्षा अधिक धनी हैं। हम लोग मंगलप्रार्थी होकर भी यदि वैष्णवोंको छोड़कर दूसरेके निकट गमन करें, तो अभीष्ट लाभ होगा ही नहीं, बल्कि उल्टे और भी हमारा अमंगल ही होगा।

वैष्णवोंका गुरुत्व अवैष्णवोंके लघुत्वकी अपेक्षा सर्व प्रकारसे आदरणीय है। शास्त्र कहते हैं—

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत्।
पुनश्च विधिना सम्यग्ग्राहयेद्वैष्णवाद्गुरोः॥

इस श्लोककी आलोचना द्वारा सर्वप्रथम हमारा यही विचार्य विषय होना चाहिये कि क्या वैष्णवको छोड़कर और कोई वस्तु है? 'वैष्णव' को छोड़कर 'विष्णु' नामक एक वस्तु है। 'अवैष्णव' नामक एक शब्द है। जो लोग नित्यकाल विष्णुकी पूजा करते हैं, वे वैष्णव हैं। जो लोग विष्णु की पूजा नहीं करते, उनका भी कर्त्तव्य विष्णुकी पूजा करना है। वे लोग अवैष्णव हैं। जो लोग विष्णुकी कथा छोड़-कर इतर-कथा-श्रवण, विष्णुस्मृतिको छोड़कर इतर-चिन्ता एवं जगतके खाने-पीने-रहने को ही 'धर्म' समझते हैं, वे 'अवैष्णव' हैं, विष्णुके निर्माल्य, विष्णुके प्रसाद, विष्णु भक्तोंके उच्छिष्टादि ही हमारी नित्य ग्रहणीय वस्तुएँ हैं। विष्णुकी कथा सुनना और बोलना ही हमारा नित्य कर्त्तव्य है। वैष्णवोंके अनुगत रहना ही हमारा नित्य कर्त्तव्य है। यदि हम इन सब सेवाओंसे वञ्चित होकर अन्य कार्योंमें व्यस्त हों, तब हम 'अवैष्णव' हुए।

हम लोग ऐसा सोच सकते हैं—यदि कोई वैष्णव है, तो और कोई अपनी रुचि के अनुसार अवैष्णव हो, तो इसमें क्या दोष है? किन्तु अवैष्णव होने पर नाना प्रकार की असुविधाएँ उपस्थित होती है। आध्या-मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक आदि त्रिताप उपस्थित होते हैं। भगवद्विमुखता ही सभी क्लेशोंका मूल कारण है। भक्तिको छोड़कर अन्यान्य कार्य करनेके कारण ही हम कष्ट पा रहे हैं। जीवोंकी स्वतन्त्र इच्छाके कारण भगवान्‌को उपासना छोड़कर जिससे दूसरे लोग हमारी उपासना करें, इसके लिये हम लोग चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी चेष्टा

लेकर हम लोग 'कर्त्ता' सज बैठे हैं। अपने स्वरूपकी उपलब्धिके अभावसे ही ये सब विचार उपस्थित होते हैं—'मैं कर्त्ता हूँ,' 'मैं भोक्ता हूँ,' 'मैं द्रष्टा हूँ,' 'मैं ध्याता हूँ' इत्यादि। जिस दिन हम लोग साधुसंग करेंगे, उस दिन हम लोग यह जान सकेंगे कि मैं कर्त्ता नहीं हूँ, भगवान् हमारी सेव्य वस्तु हैं।

भगवान्‌की शुद्धा अनुभूति इस जगतमें बहुत ही अल्प है। हम लोग कर्ममार्गमें विचरण करने के लिए ही विशेष आग्रह-युक्त होते हैं। कर्ममार्गमें विचरण करनेवाले व्यक्ति का नाम ही 'कर्त्ता' है। हम लोग सत्कर्म द्वारा सारे जगतके प्रीतिभाजन बनना चाहते हैं। भगवान्‌के भक्त लोग हमें कृपा कर बतलाते हैं—"भगवान्‌की सेवा ही एकमात्र कर्त्तव्य है। देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि सभी प्राणियोंका ही कर्त्तव्य भगवत्सेवा है।" हम लोग सोचते हैं—"पत्थर हुए हैं, पत्थर का कार्य है, पेड़ बने हैं,पेड़का फलदान कार्य है। जब मनुष्य हुए हैं, तब मनुष्य होना—शिक्षित बनना—सभ्य होना—समाज-संसार गठन करना—देशकी उन्नति करना आदि बहुतसे कार्य हैं। हम गृहमें रहेंगे, जहाजपर चढ़ेंगे" आदि असंख्य संकल्प हमारे निकट उपस्थित होते हैं। इसी का नाम ही अवैष्णवता है।

वैष्णवोंकी बात सुननेसे पीछे वे 'विष्णु सेवा ही एकमात्र कर्त्तव्य है' यह बात बतला दें, इसलिए उनके पास हरिकथा सुनने से भी भय लगता है। हम मोहाच्छन्न होकर अपनी क्षुद्र संकीर्णता लेकर उस समय वैष्णवों के ऊपर दोषारोप कर कहते हैं—"वैष्णव लोग हमारी उच्छृंखलता—हमारे इन्द्रिय-तर्पण में जब प्रश्रय नहीं देते, तब, वे साम्प्रदायिक या पक्षपाती हैं।" जिस दिन हम लोग 'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम्'—इस श्रुतिका मर्म समझ पायेंगे, उसी दिन हम लोग दृश्य जगतके भोगमय दर्शनसे मुक्त होंगे— उसी दिन हम लोग परमाणुवादीके चिन्तास्रोत, प्राकृत शुभानुध्यायी या विरोधी सम्प्रदायोंके चिन्तास्रोतसे अवसर प्राप्त कर सकेंगे। जो लोग भगवानकी सेवा विशेष रूपसे अवगत होकर निरन्तर भगवानकी प्रीति के लिए सर्वक्षण सभी चेष्टाएँ नियुक्त किये हैं, उन लोगोंके आनुगत्यमें कानोंकी सार्थकता सम्पादन करने में समर्थ हो सकेंगे।

किन्तु यदि अवैष्णवोंकी बात सुनें, उन लोगोंका परामर्श ग्रहण करें, तो दृश्य जगतके प्रत्येक परमाणुकी सेवा करते-करते आवृत अवस्थामें हमारे अनन्त कोटि जन्म बीत जायेंगे।

वैष्णवोंके निकट यह सुन पायेंगे कि विष्णुकी सेवा करने से ही सारे चेतन-अचेतन परमाणुओंकी सेवा हो जाती है। विष्णुकी सेवा ही हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। वैष्णव लोग निष्किंचन हैं। उन्हें कोई वस्तु लुब्ध नहीं कर सकती। परजगत या इस जगतमें ऐसी कोई लोभनीय वस्तु नहीं है, जो कृष्ण-पादपद्मोंके नखाग्रकी शोभासे अधिकतर लोभनीय हो। जहाँ हम लोग भगवानकी शुद्धा सेवासे लुब्ध न हों, वहाँ यही जानना होगा कि मोहिनी माया बहुरूपिणी होकर हमें झपट कर पकड़े हुई है, आक्रमण कर रही है।

जो लोग अखण्ड वस्तुकी सेवा करते हैं, उनके आनुगत्यमें ही जीवोंका मंगल होता है। दरिद्र व्यक्ति यदि दाताका वेश ग्रहण करें, तो उसकी जितनी सम्पत्ति हो, उसीके अनुसार वह दूसरेको दान कर सकता है। किन्तु वैष्णवोंकी नित्य सम्पत्ति 'साक्षात् नारायण' हैं। स्वयं नारायण यदि अपने आपको स्वयं दे दें, तब भी उनका कुछ देना बाकी रहता है। किन्तु भगवद्भक्त सम्पूर्णतः ही भगवानको दे सकते हैं। उनके द्वारा भगवान्की कोई भी हानि नहीं होती।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥"

गणित शास्त्रसे जाना जा सकता है कि कोई वस्तुमें से कुछ निकाल लेने पर उसका अवशिष्टांश ही बाकी रहता है। किन्तु अखण्ड वस्तुसे कोई वस्तु ग्रहण करने पर मूलवस्तुके अखण्डत्वकी कोई भी हानि नहीं होती। अखण्ड वस्तुका वास्तव ज्ञान ही जिनकी सम्पत्ति है, जो सर्व प्रकारसे कृष्णसेवा परायण हैं, उनके अतुलनीय पादपीठसे अन्य वस्तुकी तुलना नहीं होती।

उन वैष्णवोंकी सेवा सभीका कर्त्तव्य है। विष्णुकी सेवाकी अपेक्षा वैष्णवोंकी सेवाका माहात्म्य अधिक है। वैष्णवोंकी सेवाद्वारा ही विष्णुकी सेवा होती है।

जब कृष्णचन्द्र जगतमें आविर्भूत हुए थे, तब उन्होंने कहा था—मेरी सेवा करो। शाक्यसिंहके उदय होने पर बाहरी जगत के द्रष्टा विचारक सम्प्रदायके व्यक्ति कहने लगे—"शाक्यसिंह विष्णु नहीं हैं। हमारे गुरु परमयोगी पुरुष हैं, विष्णु एक साधारण वस्तु हैं।" किन्तु प्रकृत प्रस्तावमें बुद्ध विष्णु हैं। बौद्धमात्र ही वैष्णव कहलाये जा सकते हैं किन्तु तर्कपन्थाका आश्रय लेने के कारण वस्तुतः वैष्णव होने पर भी उनको' वैष्णवता आवृत है। 'इसलिए उनमें वैष्णव' अभिमान नहीं है।

तर्क-पन्थाके व्यक्ति लोग कृष्णकी सेवा करने के लिए नितान्त अनिच्छुक हैं। दन्तवक्र, शिशुपाल आदिने सोचा—'ये पूर्णतत्व भगवान् नहीं हैं, इसलिएहम इनकी बराबरी कर सकते हैं। भगवान् कृष्णने समस्त खण्ड धर्म के अतीत होकर वे ही एकमात्र अखण्ड वस्तु हैं, यह बात बतलाकर 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'—यह बात कही थी। किन्तु महावदान्य श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने साक्षात् कृष्ण होकर भी जीवोंकी मत्सरता दूर करने के लिए अपनेको 'कृष्ण' न कहकर 'कृष्ण,का एक भक्तमात्र हूँ', कहकर अपना परिचय प्रदान किया। द्वापर युगमें कृष्णने कहा था—मेरे शरणागत हो जाओ।' इस कथनके द्वारा किसी-किसी मत्सर तर्कपन्थीको कृष्णको समझनेमें कठिनाई हुई। किन्तु जब श्रीश्रीगौरसुन्दरने कहा—"मैं कृष्ण नहीं हूँ, तुम्हारी तरह एक व्यक्तिविशेष हूँ। तुम लोग यह न सोचना कि कृष्णका भजन करनेसे कृष्णकी ही स्वार्थसिद्धि होगी। इससे पूर्णतः तुम लोगोंकी ही स्वार्थसिद्धि होगी।" इसलिए उन्होंने कभी-कभी कहा—"मैं क्षुद्र जीव हूँ, जीवको विष्णु नहीं कहना चाहिए।" कोई कोई उन्हें 'विष्णु' कहने पर आचार्यरूपी लोकशिक्षक कृष्ण कानोंमें हाथ देते। श्रीश्री चैतन्य महाप्रभुने मत्सर निखिल जागतिक जीवोंका उद्धार करनेके लिए—उनको

कृष्णके प्रति भोगबुद्धि दूर करनेके लिए कितने प्रकारका अभिनय किया। अतएव अभी भी जगतके तर्कपन्थी व्यक्ति नतशिर होकर श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभु चैतन्यदेवकी चरणार्चना कर रहे हैं।

श्रीश्रीगौरांगदेवने जगतमें जो गुरुका कार्य किया, उसके द्वारा लोगोंके निकट श्रीकृष्णसे भी गुरुपादपद्मोंकी अधिकतर आवश्यकता ही बतलायी है। स्वयं कृष्णने अपनेको भक्त कहकर प्रचार करवाया। उससे अनन्य भक्त लोग भी यह जान सके—"मैं भी भक्त अर्थात् कृष्णका दास हूँ। कृष्ण ही मेरे आराध्य हैं।" कृष्णने ही भक्तरूपसे कृष्णान्वेषण शिक्षा देकर जीवोंके लिए कृष्णान्वेषण छोड़कर और कोई कर्त्तव्य नहीं है, यह शिक्षा दी—जीवोंकी आँखोंमें अगुँली देकर दिखलाया– खण्डित पदार्थोंके अन्वेषणसे जीवों का मंगल नहीं हो सकता। श्रीगौरांग महाप्रभुने स्वयं कृष्ण होकर भी अपनेको 'वैष्णवोंका दासानुदास' कहकर प्रचार कर तर्कपन्थी लोगों का उपकार किया है— श्रीकृष्णके अर्जुनके प्रति उपदेशके पश्चात् भी जो सभी तार्किक लोग हुए थे, उन लोगोंकी तर्काग्निमें उन्होंने प्रचुर जल सेचन किया है। श्रीमद्गीता पढ़कर जो सभी व्यक्ति तर्कपन्थी हो गये थे, अर्थात् परम कृपामय भगवान्‌को 'आत्मम्भरी','स्वार्थपर' कहकर धारणा कर बैठे थे, वे भी श्रीगौरांग महाप्रभुका चरित्र देखकर स्वराट् पुरुष भगवान् कृष्णके चरित्रका मर्म और माधुर्य उपलब्धि कर पाये हैं।

श्रीगौरांगदेव सभी गुरुओंके भी गुरु हैं। उन्होंने बतलाया कि गुरुदेव भगवान् से अभिन्न होने पर भी भगवद्भक्तके प्रधान तत्वके रूपमें गुरुतत्व नित्य अवस्थित हैं।

परिकरविशिष्ट श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभु ही हमारी आराधनाके विषय हैं। परिकरों के बिना श्रीगौरांगदेवकी पूजा नहीं होती। वैष्णवोंकी पूजाके बिना जीवोंके मंगलका और कोई मार्ग नहीं है। वैष्णवोंके अनुकरणके द्वारा जीवोंका मंगल नहीं होता—उनके अनुसरणसे ही मंगल होता है। कृष्ण का अनुकरण जीवोंके लिए असंभव है। कृष्णका अनुकरण करने जाकर आउल-बाउल आदि अपसम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है—मायावादकी सृष्टि हुई है—शुद्धाद्वैतवाद के नामपर विद्धाद्वैत या केवलाद्वैतवादकी सृष्टि हुई है।

महाजन प्रदर्शित पथका कृत्रिम अनुकरण ही 'कर्मकाण्ड' है। वह 'भक्ति' नहीं है। भक्ति आत्माकी वृत्ति है। कर्म आत्मा की उपाधिस्वरूप अनात्माकी क्रियामुखसे फल-भोगमय नश्वर अनुष्ठानमात्र है। भगवान्‌की सेवा नित्या है, भगवत्सेवक एवं भगवान्—दोनों भी नित्य हैं।

कर्मकाण्डके लोगोंकी कर्त्तृत्वाभिमानसे किये कार्योंकी अनित्यता है। वह कपूर की तरह उड़ जाता है। किन्तु भक्ति आत्मा का धर्म है। वह नश्वर नहीं है, काल द्वारा ध्वंस प्राप्त नहीं होती। हरिको परमाणु-पिण्ड या खण्डित अणुचित् वस्तु समझने पर जीवोंकी भोगबुद्धि उदित होकर वास्तव-वस्तु प्राप्ति में बाधा पहुँचती है।

श्रीश्रीगौरसुन्दरका और कोई उपदेश नहीं है—वैष्णवोंका और कोई कर्त्तव्य नहीं

है—भगवानको याद करनेको छोड़कर और कोई बात ही नहीं है । जो लोग कृष्णका आह्वान कर रहे हैं, उन कृष्णका आह्वान कार्य स्थूल या सूक्ष्म शरीरके कार्यकी तरह जड़कार्यविशेष नहीं है । परन्तु श्रीकृष्णके चिन्मय शरीरकी सेवा करनेके लिए वे उन्हें बुलाते हैं ।

मनके राजा आत्मा जब जाग्रत हो जाय, तब अपना विशेष कार्य स्वयं ही करते हैं उस समय आत्माका प्रतिनिधि मन इतर कार्यों की ओर दौड़ नहीं सकता या आत्माको धोखा नहीं दे सकता, आत्माके आदेशोंका पालन करता है । उस समय मन जो भी कार्य करता है, उनमें से प्रत्येक कार्य ही आत्माकी इच्छानुसार सम्पन्न होता है । मन यदि किसी प्रकारसे अन्य कार्य करना चाहे, तब जाग्रत आत्मा मनको बाधा देती है । तब उसका कहना है —'तुम स्वंय भला-बुरा विचार करोगे, कर्मवीर बनोगे, तुम्हें ये सभी फालतू कार्यामें नियुक्त नहीं होने दूंगा । तुम परमात्मा की सेवामें सहायता करो ।'

समस्त बद्धजीवोंके भवरोग-चिकित्सक होकर जो भी भगवत्पार्षद जीवोंकीमंगल-चेष्टा कर रहे हैं, उन लोगोंको बात सुननेसे ही जीवोंका मंगल होगा । अनन्त कोटि वर्षोंतक प्राणायाम करने पर मनका दमन नहीं होगा । वह चेष्टा हस्ती-स्नानकी त रह वृथा है ।

जब मन अपने मालिक आत्माको ठगने की चेष्टा करता है, तब ही जीव क र्म राज्यका पथिक बनता है । बाह्य या स्थूल चिन्ता द्वारा जो सभी धर्मसाधन प्रणालियाँ जगत में प्रचारित हुई हैं, उन सभी प्रणालियों द्वारा भगवद्-आराधना प्रणाली विपन्न हुई है । उनसे त्रितापदग्ध जीवोंकी रक्षा करना एकान्त कर्तव्य है । परमात्म-वस्तु श्री विष्णुके सेवक लोग वैष्णवोंके द्वारा कर्मफल का कार्य करा लेंगे,सामयिक शान्ति (Temporary relief) करा लेंगे—ये सभी ही सकीर्ण, भोगी मनोधर्मीकी बातें हैं । ऐसी मनोधर्मियोंकी बातोंको आत्मधर्मी हजारों योजन दूर रखते हैं । हम लोग ऐसे कर्मियों-द्वारा पृथिवीके अभाव, असुविधा आदिको कहाँ तक दूर करनेमें समर्थ हुए हैं ? अपने अहंकारके कर्तृत्वका नाम ही मनोधर्म है श्रीमद्गीतामें कहा गया है —"अहंकार-विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ।" ऐसे मनोधर्म द्वारा चालित होने पर जीव भगवान्‌की शरणागति भूलकर कर्मवीर बनना चाहताहै ।

जगतके सारे व्यक्तियोंकी प्रतिष्ठा रहे तो रहे, उन सब प्रतिष्ठाओंमें उन्हें प्रतिष्ठित रखकर, अपनी प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं है—यह जानकर भगवान् और उनके भक्तोंकी सेवा करने के लिए हमें अनन्त काल तक प्रस्तुत रहना चाहिए । सभी अवैष्णवोचित विचारों का परित्याग कर हम लोग वैष्णव-महाजनों का अनुसरण करते हुए भगवत्सेवामें नियुक्त रहें । उसको छोड़कर अन्यान्य चेष्टाओंद्वारा हमारे नरक-पात या यमदण्डका भय निवारित नहीं हो सकता । अतएव वैष्णवोंके सेवक होने पर ही जीवोंके सांसारिक जीवन की सफलता हो सकती है ।

—जगदगुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(नामापराध)

१–नामापराधका गुरुत्व कैसा है ?

"जिस प्रकार नाम सर्वोत्तम तत्व है, उसी प्रकार नामापराध भी सभी प्रकारके पाप और अपराधोंको अपेक्षा कठिन है। सभी प्रकारके पाप और अपराध नामाश्रय मात्र से ही दूर होते हैं, किन्तु नामापराध इतने सहज रूपमें दूर नहीं होता।"

—जै० ध० २०वाँ अ०

२–किसी भी प्रकारके पापके साथ नामापराधकी क्या तुलना हो सकती है ?

"पाँच प्रकारके पाप कोटिगुणित होने पर भी नामापराधके साथ तुलना नहीं किये जा सकते।"

—जै० ध० २५वाँ अ०

३–अपराध–परित्यागमें यत्न नहीं कर नाम–ग्रहणके अभिनय द्वारा क्या नाम का फल प्राप्त होता है ?

"नामाभास और नामका भेद नहीं जानकर बहुतसे लोग समझते हैं कि नाम अक्षरमय है। अतएव श्रद्धा कर नामादि नहीं करने पर भी फल मिलेगा। वे लोग अजामिलका इतिहास और 'सांकेत्यं पारिहास्यं वा' इत्यादि श्लोक एवं शास्त्र - वचन की आड़ लेते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि 'नाम' चैतन्यरस विग्रह है, इन्द्रियग्राह्य नहीं है। निरपराधपूर्वक नामरस का आश्रय नहीं करनेपर नामका फलोदय नहीं होता। श्रद्धाविहीन लोगोंके नाम ग्रहणका फल यही है कि पश्चात् सश्रद्ध नाम हो सकता है। अतएव दुष्टरूपसे अर्थवाद कर जो लोग नामको जड़ात्मक अक्षर स्वरूप कहकर कर्मकाण्डके अङ्गके रूपमें व्याख्या करते हैं, वे लोग नितान्त बहिर्मुख एवं नामापराधी हैं।" —'श्रीहरिनाम'

४–अवैध योषित् (स्त्री) को नामाश्रित करने का अभिनय कर नाम–बल पर योषित् सङ्गका आश्रय लेना क्या नामापराध नहीं है ?

"कोई भिक्षुक आश्रमगत वैष्णव पुरुषने किसी सुन्दरी युवतीको देखकर लोभ किया। अन्तमें पाप–प्रवृत्तिद्वारा चालित होकर यह स्थिर किया—"जब मैं निरन्तर हरिनाम करता हूँ तब इस युवतीको हरिनाम–शिष्य कर उसको सेवा ग्रहण करनेसे जो कुछ पाप होगा, वह दोनोंके द्वारा किये गये हरिनामसे अवश्य ही नष्ट होगा। विशेषतः यह स्त्री वैष्णवी हुई; वैष्णव–संग दुर्लभ है। ऐसी वैष्णवीकी संगसे गोपीभाव की शिक्षा बहुत कुछ होगी। ऐसा दुर्लभ संग कहाँ मिल सकता है ?" —ऐसा सोचकर उस स्त्रीको वैष्णवी बनाकर वैष्णव–सेवा ग्रहण किया। यह नामापराधकी पराकाष्ठा हो गई।"

—'नामबलपर पाप–प्रवृत्ति एक नामापराधहै', स० तो०।६

५-हरिनाम शीघ्र फलजनक न होनेका क्या कारण है ?

"वे सर्वशक्तिसम्पन्न नाम देह, गेह, अर्थ, जनता, लोभ आदि पाषाणमें पतित होनेपर शीघ्र फलजनक नहीं होते । यह प्रतिबन्धक दो प्रकारका है—सामान्य एवं वृहत् । सामान्य प्रतिबन्धक होने पर उच्चारित नाम 'नामाभास' है, कुछ-कुछ विलम्बमें फल प्रदान करता है । वृहत् प्रतिबन्धक होने पर उच्चारित नाम 'नामापराध' होता है । यह अविश्रान्त नामोच्चारणके बिना दूर नहीं होता ।" —जै० ध० २४ वाँ अ०

६-अनन्य भक्तिहीन व्यक्तिका क्या लक्षण है ?

"गुरु वैष्णवोंका अनादर, असत्सङ्ग अर्थात् अवैध-स्त्रीसंग एवं अभक्तसंग, गुरु के प्रति अवज्ञा, भक्ति शास्त्रकी निन्दा, नाम -नामीमें भेदबुद्धि, अन्य शुभ कर्मोंके साथ नामकी साम्य-बुद्धि, जड़ देहके प्रति अहंता -ममताके कारण नाममें प्रीतिका अभाव, नाम बलपर पापाचार आदि जो सभी भक्ति विरुद्ध निन्दित आचार हैं, जिनमें पायी जाय, उन्होंने श्रीकृष्णके प्रति अनन्य भक्ति प्राप्त की है, ऐसा कहा नहीं जा सकता ।"

—'कुटिनाटी, स० तो० ६।७

७-दस प्रकार के नामापराध क्या-क्या हैं ?

"नामापराध दस प्रकारके हैं—(१) साधु -निन्दा—जो लोग एकान्त रूपसे नामाश्रय किये हैं, उनकी निन्दा, उनसे द्वेष करना । वे लोग केवल नाम-तत्व ही जानते हैं, ज्ञान -योग आदि कुछ भी नहीं जानते, ऐसा सोच-कर उनकी अवहेलना करने पर भी घोर अपराध होता है । (२) देवान्तरमें स्वतन्त्रज्ञान — श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् एवं सर्वेश्वर हैं । अन्यान्य देवी-देवता उनके आज्ञाकारी हैं । कृष्णका भजन करने से ही अन्य देवदेवियोंका भजन होता है— ऐसा विश्वास न कर कृष्ण एक ईश्वर हैं, शिव एक ईश्वर हैं—इस प्रकार स्वतन्त्र शक्तिसद्धि बहुत ईश्वरकी कल्पना करने पर नामापराध होता है । (३) गुर्ववज्ञा—जो व्यक्ति नामतत्वकी सर्वोत्कर्षता शिक्षा देते हैं, वे नाम गुरु हैं । यदि ऐसा सोचें कि वे नाम -शास्त्रमें ही विशेष व्युत्पन्न कुशल) हैं, अन्य साधन-विषयमें कुछ भी नहीं जानते, तो ऐसा होने पर अपराध होता है । सभी कर्मोंके चरम फलरूपी नामतत्व जिन्हें प्राप्त हुआ है, उनका कोई दूसरे साधनसे प्रयोजन नहीं है । उनका कुछ जानना भी बाकी नहीं है । (४) श्रुतिनिन्दा—वेदोंमें नामका माहात्म्य बहुत कुछ बतलाया गया है, उन सभी नाम-माहात्म्य सूचक वेद-वाक्योंमें अविश्वासमूलक द्वेष-भाव वहन करने पर नामापराध होता है । (५) हरिनाम में अर्थवाद—अर्थात् राम, कृष्ण हरि आदि का नाम कल्पित हैं, भगवानके नाम-रूप-गुण- लीला कुछ भी नहीं है—ऐसा सोचने पर नामापराध होता है । (६) नाम-बल पर पाप—नाम करनेपर पाप नहीं रहेगा, अथवा नाम करते-करते क्रमशः चित्त शुद्ध होकर पापमें और रुचि नहीं रहेगी, वर्तमान में अपने स्वार्थके लिए एक पाप कर लूँ— इस प्रकार सोचकर पाप करने पर बड़ा

कठिन नामापराध हो पड़ता है। (७) शुभ कर्म-साम्य—अर्थात् धर्म, व्रत, तपः आदि जिसप्रकार शुभ कर्म हैं, नाम भी उसी प्रकार एक शुभ कर्मविशेष है। अतएव जिस किसी एक शुभ कर्मका आश्रय लेने पर आत्मशुद्धि हो सकती है, ऐसा सोचकर नामाश्रम नहीं करने पर नामापराध होता है। (८) प्रमाद —नाममें अनवधानता अर्थात् उदासीनता जाड्य और विक्षेप रहने पर नामापराध होता है। नाम ग्रहणकालमें नामके प्रति उदासीन होकर मुखमें नाम और मनसे नाना प्रकारके विषयोंकी चिन्ता करना ही औदासीन्य या उदासीनता है। नामग्रहणमें अरुचि एवं कब संख्या-नाम शेष होगा, ऐसा सोचकर बारम्बार जपमालाके सुमेरुके प्रति कटाक्षपात आदि जाड्यके लक्षण हैं। प्रतिष्ठाशा या शठताके वशवर्ती होकर नाम-ग्रहण ही विक्षेप है। (९) अज्ञ एव अश्रद्धालु व्यक्तिको नाम-मन्त्र दान —अज्ञ एव अश्रद्धालु व्यक्तिको नाम-माहात्म्य बतलाकर नामके प्रति विश्वास होने पर उसे नाममन्त्र प्रदान करना उचित है। सामान्य अर्थ-लोभसे अयोग्य शिष्यको नाम देने पर गुरु अपराधसे अधःपतित होते हैं। (१०) अहं-मम भाव—नाम-माहात्म्य जान सुनकर भी विषयासक्तिकी अधिकताके कारण नाम-भजनमें प्रवृत्ति नहीं होना विशेष अपराध है। इन दस प्रकारके नामापराधोंका परित्याग कर कृष्ण नाम श्रवण-कीर्तन करने पर नाम फलसे प्रेम प्राप्त होता है।"

—'विशुद्धभजन' स० तो० ११।७

८-पहले नामापराधका क्या स्वरूप है?

"प्रथम अपराध यही है कि जिन सभी साधु लोगोंने एकमात्र नामका ही आश्रय ग्रहण किया है एवं समस्त कर्म, धर्म, ज्ञान एवं योगका परित्याग किया है, उनकी निन्दा करने से बड़ा अपराध होता है। क्योंकि नाम का यथार्थ माहात्म्य जो लोग जगतमें विस्तार कर रहे हैं, उनकी निन्दा हरिनाम सहन नहीं कर सकते। नामापरायण साधु लोगोंकी निन्दा परित्यागपूर्वक उन्हें ही सर्वोत्तम साधु जानकर उनके संग नाम-कीर्त्तन करनेपर नामकी कृपा शीघ्र होती है।'

९—द्वितीय नामापराधके कितने भेद हैं?

"द्वितीय नामापराधकी व्याख्या दो प्रकार से होती है—प्रथम यह है कि देवाधिगण्य सदाशिव एवं श्रीविष्णु—इनके गुण-नामादि सभी ही बुद्धिद्वारा पृथक् रूपसे देखनेपर नामापराध होता है। तात्पर्य यही है कि सदाशिव एक पृथक् स्वतन्त्र-शक्तिसिद्ध ईश्वर हैं एवं विष्णु एक पृथक् ईश्वर हैं—ऐसी कल्पना के द्वारा बहुईश्वरवाद हो पड़ता है। उससे भगवानके प्रति अनन्य भक्तिमें बाधा होती है। अतएव श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर हैं एवं उनकी शक्तिसे ही शिवादि देवताका ईश्वरत्व है अर्थात् उन उन देवताओंकी पृथक् शक्तिमत्ता सिद्ध नहीं है, ऐसी बुद्धिके साथ हरिनाम करने पर नामापराध नहीं होता। द्वितीय व्याख्या यही है कि शिवस्वरूप अर्थात् सर्वमंगलस्वरूप भगवानके नाम, रूप गुण और लीलाको उनके नित्यसिद्ध विग्रहसे पृथक् रूपसे देखने पर नामापराध होता है। अतएव

कृष्णस्वरूप कृष्णनाम, कृष्णगुण और कृष्ण लीला—सभी ही अप्राकृत एवं परस्पर अपृथक् हैं, ऐसा ज्ञान और विज्ञान प्राप्त कर कृष्णनाम करना होगा, अन्यथा नामापराध होगा। इस प्रकारका सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त कर कृष्णानाम करने की विधि है।"

—जै०ध० २४ वाँ अ०

१०-तृतीय नामापराध—गुर्ववज्ञाका क्या लक्षण है ?

"नाम गुरुके प्रति ऐसी बुद्धि करना कि वे नाम-शास्त्र हो अवगत हैं, किन्तु जो लोग वेदान्त-दर्शनादि अधिक जानते हैं, वे नाम-शास्त्र-गुरु अपेक्षा शास्त्रार्थ अधिक जानते हैं—एक भीषण अवज्ञा है। ऐसा विचार करनेवाले व्यक्ति नामापराधी हैं। वस्तुतः नाम-तत्वविद् गुरुकी अपेक्षा और उच्च गुरु नहीं हैं, उनको लघु मानने पर नामापराध होगा।"

जै० ध० २४ वाँ अ०

११-श्रीगुरुदेवको कैसा समझना चाहिये ?

"श्रीगुरुको सामान्य जीव नहीं जानना चाहिये। उन्हें कृष्णकी स्वरूपशक्ति-पुष्ट 'कृष्ण-परिकर' जानकर भगवान्के समान भक्ति करनी चाहिए। गुरु को साक्षात् कृष्ण समझना मायावादीका मत है—शुद्ध वैष्णवों का मत नहीं है।"

—'गुर्ववज्ञा' ह० चि०

१२-चौथा नामापराध क्या है ?

सभी वेद एवं सभी उपनिषदोंमें नाम-माहात्म्य वर्णित है। इन सभी श्रुतियोंकी निन्दा करने पर नामापराध होता है। बहुत से व्यक्ति दुर्भाग्यवशतः श्रुतिके अन्यान्य उपदेशोंका अधिक सम्मान करते हुए नामार्थ-प्रतिपादक श्रुतिके प्रति जो अवहेला करते हैं, वही उनका नामापराध है। उस अपराधके कारण उनकी नाममें रुचि नहीं होती।"

जै० ध० १८ वाँ अ०

१३-नाममें 'अर्थवाद' अपराध किस प्रकार होता है ?

"जो लोग नाम-माहात्म्य-वाचक श्रुति, स्मृति और पुराणसमूहमें अर्थवाद है, ऐसा कहते हैं, वे लोग अक्षय नरकमें पतित होते हैं।"

—जै० ध० २५ वाँ अ०

१४-नाममें अर्थवाद-कल्पना किसे कहते हैं ?

अर्थवाद यही है कि नाम सम्बन्धमें शास्त्रोंमें जो माहात्म्य बतलाया गया है, वह यथार्थ नहीं है, केवल नाममें मति प्रदान करनेके लिए ऐसी फलश्रुति लिख दीगई है। इस नामापराधसे उन सभी लोगोंकी नाममें रुचि नहीं होती। हमें शास्त्रोक्त वाक्योंमें विश्वासपूर्वक नाम करना होगा। जो लोग अर्थवाद करते हैं, उनका संग नहीं करना चाहिए। हठात् उन्हें देखनेसे वस्त्रोंके सहित स्नान करना चाहिये—ऐसी शिक्षा श्रीगौरांग महाप्रभुने दी है।" —जै० ध० २८ वाँ अ०

१५-हरिनामको कल्पित समझने पर क्या दोष है ?

"भगवानके सभी नामोंको कल्पित समझनेपर अपराध होता है। मायावादी लोग एवं कर्मजड़ व्यक्ति यह समझते हैं कि परम

तत्व ब्रह्म निर्विकार एवं नाम-रूप शून्य हैं। उनके रामकृष्णादि नाम कार्यसिद्धिके लिए ऋषियोंने कल्पना की है—जिन लोगोंका ऐसा विचार है, वे लोग नामापराधी हैं।"

—जै० ध० २४ वाँ अ०

१६-'नाम बलपर पाप-बुद्धि' नामापराधका क्या स्वरूप है ?

"जिन लोगोंका नाम बलपर पापाचरणमें प्रवृत्ति हो, वे लोग नामापराधी हैं। नामके भरोसे पर जो सभी पाप किये जाय, वे यम-नियम आदिसे शुद्ध या दूर नहीं होते। क्योंकि वे नामापराध होनेके कारण नामापराध क्षय की जो पद्धति है, उसीके द्वारा ही उनका विनाश होता है।"

—जै० ध० २५ वाँ अ०

१७-हरिनाममें और पापमें परस्पर 'जमा-खर्च' की चेष्टा क्या है ?

"हरिनाम भी करूँगा, पाप भी करूँगा, परस्पर जमा-खर्च होकर आखिरमें कुछ भी पाप नहीं रहेगा—ऐसा विचार कर जो व्यक्ति नामाश्रयके पश्चात् इच्छापूर्वक नये पाप करते हैं, वे कपटी एवं नामापराधी हैं।"

—'नाम बलपर पाप-प्रवृत्ति एक नामापराध है', स० तो० ८।६

१८-किस प्रकारके आचरण द्वारा नामबलपर पापबुद्धिका उदय होता है ?

"कुछ कुछ अपराध रहनेपर उच्चारित नाम केवल नामाभास होता है, शुद्ध नाम नहीं होता। नामाभासमें भी पूर्व पापोंका क्षय होकर नये पापोंमें रुचि नहीं होती होती। किन्तु पूर्व अभ्यासके कारण कुछ कुछ पाप बाकी रहते हैं, वे क्रमशः नामाभाससे क्षय होते रहते हैं। कदाचित् कोई पाप हठात् हो जानेपर भी वह नामाभासके द्वारा नष्ट हो जाता है। किन्तु यदि वह नामाश्रयी व्यक्ति ऐसा सोचें कि नामके द्वारा जब सभी पाप क्षय हो जाते हैं, तब यदि मैं कोई पाप करूँ, तो वह भी अवश्य नष्ट होगा—इस भरोसे में वह पापाचरण करें, तो वह पाप अपराध हो पड़ता है।"

—जै० ध० २४ वाँ अ०

१९-अन्य शुभ क्रियाका साम्य अपराध कैसा है ?

"हरिनाम साधनकालमें उपाय होकर भी फलकालमें स्वयं उपेय है। अतएव हरिनामके साथ अन्य कोई भी सत्कर्म की तुलना नहीं है। जिनके मनमें अन्य सत्कर्मके साथ हरिनामकी अनन्यबुद्धि हो, वे लोग नामापराधी हैं।"

—जै० ध० २४ वाँ अ०

२०-नाममें रति न होने का प्रधान प्रतिबन्धक क्या है ?

"दूसरे समस्त नामापराधोंका परित्याग करने पर भी अनवधानता रहने पर कदापि नाममें रति नहीं होती।"

—'उत्साह' स० तो० ११।१

२१-प्रमाद या अनवधान कितने प्रकार का है ?

"औदासीन्य, जाड्य आर विक्षेप—ए तिन।
प्रकार अनवधान बुझिबे प्रवीण ॥"

—ह० चि० १२ वाँ प०

अर्थात् प्रमाद या अनवधान तीन प्रकारका है—उदासीनता, जाड्य एवं विक्षेप ।

२ –विक्षेप–प्रमादासक्त व्यक्तियोंकी चेष्टा कैसे होती है ?

"जो लोग विक्षेपरूप प्रमादासक्त हैं, वे लोग निरूपित नामसंख्या जितना शीघ्र हो, उतना शीघ्र करनेकी चेष्टा करते हैं । नाम-साधनमें जिससे वैसा अयत्न न हो—इसके लिए बारम्बार सतर्कताके साथ चेष्टा करना आवश्यक है ।"

—'प्रमाद' ह० चि०

२३–हरिनाममें उदासीनता क्यों होती है ?

"कनक, कामिनी, आर जय-पराजय ।
प्रतिष्ठाशा, शाठ्यवृत्ति ताहार निलय ।
ए सब आकृष्टि हृदे हइले उदय ।
नामेते अनवधान स्वभावतः हय ॥"

—'प्रमाद' ह० चि०

"अर्थात् कनक, कामिनी, जागतिक जय-पराजय, प्रतिष्ठाशा आदिकी ओर आकर्षण रहनेपर या कपटता, अन्याभिलाषिता आदि दोष रहने पर भी स्वाभावतः उदासीनता रूप अनवधान होता है।"

२४–अश्रद्दधानको नामोपदेश कैसा होता है ?

"जिनमें श्रद्धा उदित नहीं हुई है, अप्राकृत सेवासे विमुख हैं एवं हरिनाम श्रवणके अनिच्छुक हैं, उनको हरिनामका उपदेश करने पर नामापराध होता है ।"

—जै० ध०२४ वाँ अ०

२५ – 'अहं-मम' नामापराध कैसा है ?

"जो लोग इस जड़ीय संसारमें 'मैं एक व्यक्ति हूँ और, मेरी समस्त सम्पत्ति और परिजन मेरे हैं—ऐसी बुद्धिसे मदमत्त हो एवं क्षणिक विराग या ज्ञानका उदय होने पर पण्डितोंके निकट नाम-माहात्म्य श्रवण करते हैं, किन्तु उस नाममें जो प्रीति करनी चाहिए, वह प्रीति नहीं करते, वे लोग नामापराधी हैं ।"

—जै० ध० २४ वाँ अ०

२६—दीक्षित व्यक्तिकी भक्ति-पथसे च्युतिका क्या कारण है ?

"दीक्षित होकर भी अधिकांश विषयी लोग इस जड़देहमें अहंता-ममता बुद्धि कर भक्तिपथसे भ्रष्ट होते हैं ।"

—'अहं-ममता भावापराध' ह० चि०

२७—अहंता-ममता दूर करने का क्या उपाय है ?

"निष्किञ्चनभावे भजे श्रीकृष्णचरण ।
विषय छाड़िया करे नामसंकीर्त्तन ॥
सेइ साधुजने अन्वेषिया तांर संग ।
करिबे सेविबे छाड़ि विषय तरंग ॥
क्रमे क्रमे नामे मति हइबे संचार ।
अहंता-ममता जाबे, माया हबे पार ॥"

अर्थात् जो महाजन निष्किञ्चन होकर श्रीकृष्णका भजन करते हैं एवं विषय छोड़कर नामसंकीर्त्तन करते हैं उनका अन्वेषण कर उनका संग करते हुए विषय वासना परित्याग कर उनकी सेवा करनी चाहिए। क्रमशः उनकी कृपासे नाम के प्रति अनन्य रुचि होगी। इस प्रकार अहंता-ममताका नाश होने पर मायासे

पार हो सकेंगे।

नामापराधीका क्या लक्ष्य होता है?

"नामापराधी व्यक्ति जो फल वांछा कर नाम उच्चारण करते हैं, नाम उन्हें वे फल प्रदान करते हैं। किन्तु कदापि उन्हें प्रेमफल नहीं देते। साथ ही साथ उनके नामापराधका फल प्राप्त होता है।"

– जै० ध० २५ वाँ अ०

२९—किस प्रकार नामापराधका क्षय होता है?

"कृष्णेर श्रीमूर्त्ति-प्रीति अपराध करि।
नामाश्रये सेइ अपराध जाय तरि॥
नाम अपराध जत नामे हय क्षय।
अविश्रान्त लैले सर्वसिद्धि हय॥"

—'भजनरहस्य'

अर्थात् भगवान् कृष्णके प्रति या उनकी श्रीमूर्त्तिके प्रति किया गया अपराध नामाश्रयसे दूर होता है। अविश्रान्त नाम ग्रहण करने पर नामापराध सम्पूर्ण रूपसे क्षय होकर सर्वसिद्धि होती है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीकृष्णनामकी सर्वसुलभता

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
मा चण्डालमूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मंत्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

(श्रीलक्ष्मीधरस्वामी रचितं)

पण्डितवर श्रीलक्ष्मीधरजी कहते हैं—यह श्रीकृष्णनामात्मक महामंत्र बहुत ही अद्भुत शक्तिशाली है। यह इतना सुलभ है कि जिह्वाके स्पर्शमात्रसे ही फलीभूत हो जाता है। यह आत्माराम, आप्तकाम विशुद्ध चित्तवाले योगीजनोंको भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। अतएव सर्वश्रेष्ठ वशीकरण मंत्रस्वरूप है। यज्ञ, योग, तप, दानादि अन्यान्य साधनों द्वारा कदापि नहीं नष्ट होनेवाले महान्से महान् पातकोंको भी दूर भगाने का एक विचित्र उच्चाटन मंत्र है। यह सर्वदेश, काल आदिमें भी कीर्त्तन किया जा सकता है। अतएव इतना सुलभ है कि गूँगे व्यक्तिको छोड़कर चाण्डालतक सभी व्यक्ति इसका कीर्त्तन कर सकते हैं। कीर्त्तन करनेकी केवल इच्छामात्रसे ही यह अपनी अहैतुकी कृपासे जन-मात्रके वशीभूत हो जाता है। दुर्लभ मोक्षलक्ष्मी सदा-सर्वदैव इसके पश्चात्-पश्चात् घूमती रहती है। और मंत्रोंकी तरह यह गुरुद्वारा दीक्षा, सदाचार, पुरश्चरण आदि सत् अनुष्ठानोंकी लेशमात्र भी अपेक्षा नहीं रखता।

(श्रीपद्यावलीसे संग्रहीत)

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत
(द्वितीय खण्ड, सप्तम वृष्टि)
रस-विचार

(गतांक, पृष्ठ २२से आगे)

रस-भावगत उपासना त्रिविध है—(१) कुण्ठित (२) स्वल्पविकसित और (३) विकसित।

कुण्ठित उपासना—कुण्ठित उपासक लोग उपासनाकालमें रसको अत्यन्त कुण्ठित रूपसे अनुभव कर पाते हैं। उपासना कार्य त्याग करनेके साथ रसकी अप्राप्ति होती है। उसका कारण यही है कि ये सभी लोग जड़रसका संभोग करते हैं। रस व्यतीत जीवन नहीं रहता। उनका जीवन सर्वदा जड़ रसमय है। चिद्रस उनके जीवनमें विद्युत् प्रभावकी तरह क्षणिक प्रक्रियाविशेष है। सद्गुरु-प्राप्तिके द्वारा और साधुसंगके बलसे इस अवस्थासे उन्नत होकर क्रमशः प्रस्फुटित अवस्था होती है। साधुसंगके अभावमें एवं नास्तिक उपदेश और निर्विशेष उपदेश द्वारा यह कुण्ठित उपासना भी क्रमशः अति कुण्ठित अत्यन्त कुण्ठित और विलुप्तप्राय अवस्था स्वीकार करती है। यह जीवोंके लिए अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है।

स्वल्प विकसित उपासना—इस अवस्था में उपासना जीवनके अधिकांश अंशोंमें व्याप्त रहती है। जहाँ रस-कथा सुनी जाती है, वहीं उसकी प्रीति है। उस अवस्थामें नास्तिक और निर्विशेषवादियोंकी नितान्त उदासीनता उपस्थित होती है।

विकसित उपासना—उपासनाकी विकसित अवस्थामें रसका यथार्थ रूपसे ज्ञान होता है। रस परिज्ञात होकर अपना कार्य अप्रतिहत रूपसे करता रहता है। इस विकसित अवस्थामें रस शान्त, दास्य, सख्य वात्सल्य और मधुर—इन पाँच आकृतियोंमें देखा जाता है। सख्य, वात्सल्य और मधुर रसके अधिकारी अल्प संख्यक हैं। बहुत भाग्यसे इन सभी रसोंमें जीवोंकी रुचि होती है।

तृतीय-धारा
शान्त-रस विचार

उपास्य वस्तु निर्विशेष (undistinguishable) नहीं है, किन्तु सविशेष (personal) है — ऐसी निश्चयात्मिका भगवत्तत्त्वसम्बन्धी बुद्धिको 'शम' कहा जा सकता है। जिस उपासकके हृदयमें शम प्रकट हुआ है, जब वे उपासक 'उत्पन्न-रति'

होते हैं, तब उनकी रति ही 'शान्त रति' कहलाती है । शान्त जीव ही शान्त रतिके आश्रय हैं। सविशेष (Personal God) भगवान ही उस रतिके विषय हैं । शान्त जीव भगवत् तत्त्वमें जड़-बुद्धि-परिशून्य होते हैं । चित्सुख प्राप्तिका योग ही उनकी उपासनाका लक्षण है । विषयोन्मुखता परित्यागपूर्वक वे निजानन्दमें स्थित होते हैं। अतएव कृष्ण उनके सम्बन्धमें परमात्मा या किञ्चित् सविशेष ब्रह्म रूपसे प्रतीत होकर उनकी रतिके विषय होते हैं । नितान्त निर्विशेष ब्रह्म-चिन्तामें रति नहीं है । उत्पन्न-रति पुरुषके जो ब्रह्म हैं, वे सविशेषप्राय हैं। किन्तु ब्रह्मके क्या नित्यविशेष हैं, उस सिद्धान्तमें कुछ अस्थिरता रहती है । अतएव कभी तो चतुर्भुजस्वरूप, कभी ऐश्वर्यगत कृष्णस्वरूप, कभी आध्यात्मिक परमात्म-स्वरूप उनके चित्तमें उदित होते हैं। सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार आदि ही ऐसे भक्त के आदर्श हैं[1] ।

---

१. आत्मारामास्तु सनकसनन्दनमुखा मताः । प्राधान्यात् सनकादीनां रूपं भक्तिश्च कथ्यते ॥
ते पंचमाब्दबालाभाश्चत्वारस्तेजसोज्ज्वलाः । गौराङ्गा वातवसनाः प्रायेण सहचारिणः ॥

तेषां भक्तिः—

समस्तगुणवर्जिते करणतः प्रतीचीनतां, गते किमपि वस्तुनि स्वयमदीपि तावत् सुखम् ।
न यावदियमद्भुता नवतमालनीलद्युतेर्मुकुन्द सुखचिद्घना तव बभूव साक्षात्कृतिः ॥

तेषां निष्ठाः—

कदा शैलद्रोण्यां पृथुलविटपिक्रोड़वसतिर्वसानः कौपीनं रचितफलकन्दाशनरुचिः ।
हृदि ध्यायं ध्यायं मुहुरिह मुकुन्दाभिधमहं चिदानन्दं ज्योतिः क्षणमिव विनेष्यामि रजनीः ॥

उद्दीपनाः—

श्रुतिर्महोपनिषदां विविक्तस्थानसेवनम् । अंतर्वृत्तिविशेषस्य स्फूर्तिस्तत्त्वविवेचनम् ॥
विद्याशक्तिप्रधानत्वं विश्वरूपप्रदर्शनम् । ज्ञानिभक्तैन संसर्गो ब्रह्मसत्रादयस्तथा ।
एष्वसाधारणा प्रोक्ता बुधैरुद्दीपना अमी ॥
पादाब्जतुलसीगन्धः शंखनादो मुरद्विषः । पुण्यशैलः शुभारण्यं सिद्धक्षेत्रं स्वरापगा ।
विषयादिक्षयिष्णुत्वं कालस्याखिलहारिता । इत्याद्युद्दीपनाः साधारणास्तेषां किलाश्रितैः ॥

तत्र अनुभावाः—

नासाग्रन्यस्तनेत्रमवधूतविचेष्टितम् । युगमात्रेक्षितगतिर्ज्ञानमुद्राप्रदर्शनम् ॥
हरेर्द्वेष्यपि न द्वेषो नातिभक्तिः प्रियेष्वपि । सिद्धतायास्तथा जीवन्मुक्तेश्च बहुमानिता ॥
नैरपेक्ष्यं निर्ममता निरहङ्कारिता तथा । मौनमित्यादयः शीताः स्युरसाधारणाः ॥

तत्र सात्त्विकाः—

रोमाञ्चस्वेदकम्पाद्याः सात्त्विकाः प्रलयं विना ।

अथ संचारिणः—

संचारिणोऽत्र निर्वेदो धृतिर्हर्षो मतिः स्मृतिः । विषादोत्सुकतावेगवितर्काद्याः प्रकीर्तिताः ॥

अथ स्थायी—

अत्र शान्तिरतिः स्थायी समा सान्द्रा च सा द्विधा ।
तत्कारुण्यश्लथीभूतज्ञानसंस्कारसन्ततिः । एष भक्तिरसानन्दनिपुणः स्याद् यथा शुकः ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु, पश्चिमविभाग, प्रथम लहरी)

भगवानका स्वरूप नित्य है—यह स्थिर न होनेके कारण शान्त भक्तोंकी कृष्णके प्रति ममता नहीं होती । ममता स्वभावतः स्वरूपनिबन्धन भावविशेष है । अतएव शान्तभक्तकी रति असम्पर्कताके कारण शुद्ध अवस्थामें ही रहती है। सच्चिदानन्दघनीभूत-स्वरूप, आत्माराम-शिरोमणि, परमात्मा, परब्रह्म, सदास्वरूपसंप्राप्त, गतिदाता, दया-शील, विभु—इस प्रकार गुणविशिष्ट हरि ही शान्तरतिके आलम्बन अर्थात् विषय है । इस रतिका आश्रय जो जीव है, वह या तो आत्माराम है या तापस । समस्त गुणवर्जित, अतीन्द्रिय, स्वप्रकाश चिद्घन किसी मुकुन्द नामक वस्तुकी साक्षात्करणशील रति ही इसका स्थायी भाव है । प्रधान प्रधान उपनिषद्-श्रवण, विविक्त (एकान्त) स्थानमें वसति, अन्तर्वृत्तिविशेषकी स्फूर्त्ति, तत्त्व-विचार, विद्याशक्तिका प्रभाव, विश्वरूप-दर्शन, तत्त्वविद् भक्तोंका संसर्ग, ब्रह्मसत्र अर्थात् समविद्य लोगोंके साथ उपनिषद् और वेदान्त-सूत्रार्थ विचार—ये सभी शान्त रसमें उद्दीपन माने गये हैं । नासिकाग्र-दर्शन, अवधूत-चेष्टा, जाते समय चार हाथ दूरी तक दृष्टिपात, अङ्गुष्ठ-तर्जनी-स्पर्शरूप ज्ञानमुद्रा प्रदर्शन, भगवद्विद्वेषीके प्रति द्वेषरहितता, भक्तोंका सामान्य सम्मान, अत्यन्त संसार-ध्वंसरूप सिद्धिके प्रति आदर, लिङ्ग और स्थूल—दोनों शरीरोंकी अनावेशके साथ स्थितिरूप जीवन्मुक्तिका बहुत आदर, निर-पेक्षता, निर्ममता, निरहङ्कारिता और मौन इत्यादि क्रिया-समूह ही शान्त रतिके अनुभाव हैं। प्रलयको छोड़कर अन्य सभी रोमाञ्च आदि सात्त्विक भाव शान्त भक्तोंमें उदित होते हैं, किन्तु उनकी शरीरगत अभिमान-शून्यताके कारण ये सभी सात्त्विक भाव केवल धूमायित अवस्था प्राप्त होते हैं । कभी-कभी ज्वलितवत् प्रकाशित होते हैं। कदापि दीप्त या उद्दीप्त नहीं होते। शान्त रसमें निर्वेद, धैर्य, हर्ष, मति, स्मृति, औत्सुक्य, आवेग और वितर्क आदि व्यभिचारी या संचारी भाव सभी कभी-कभी देखे जाते हैं। इस प्रकार विशेषसे विशिष्ट होकर शान्त रस रसोंमें परिगणित हुआ है। व्रजलीलारूप चिद्रसवर्णनमें शान्त रस परिलक्षित नहीं होता। क्योंकि यह रस कोई विशेषसिद्ध, एक स्वरूपगत नहीं है। अतएव ममताशून्य है। जीवोंके बहुत भाग्यसे ही भगवत्स्वरूपमें ममता उदित होती है । उस ममताके उदय होनेसे ही शुद्धा रति प्रेम रूपसे पुष्ट होती है। उस समय प्रीत भक्तिरस प्रकाशित होता है।

(क्रमशः)

सन्दर्भ-सार
(भक्तिसन्दर्भ-१३)

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचतो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-
माशासते यदि त आशिष ईश नान्ते ॥
(१०।७२।४)

हे पद्मनाभ ! पुरुषोत्तम ! जो सभी शुद्धात्मा जीव अविद्यानाशक तुम्हारे दोनों पादुकाओंकी निरन्तर सेवा, ध्यान एवं कीर्त्तन करते हैं, वे लोग ही संसारसे मोक्ष प्राप्त करते हैं। यदि वे कुछ कामना करें, उसे वे ही प्राप्त करने में समर्थ हैं । अन्यान्य व्यक्ति राजचक्रवर्त्ती होने पर भी उसे प्राप्त नहीं कर सकते ।

यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम् ।
तथा समस्तसिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते ॥
(बृहन्नारदीय पुराण. १०।८१)

जिस प्रकार जल समस्त व्यक्तियोंका जीवनस्वरूप है, उसी प्रकार भक्ति ही समस्त सिद्धियोंकी प्राण-स्वरूपा हैं ।

यो यज्ञपुरुषो यज्ञे योगे यः परमः पुमान् ।
तस्मिंतुष्टे यदप्राप्यं किं तदस्ति जनार्दने ॥
(श्रीविष्णुपुराणे, पुलह वाक्यम्)

जो यज्ञमें यज्ञपुरुष 'यज्ञेश्वर' विष्णु हैं एवं योग शास्त्रमें जो परमात्माके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे ही जनार्दन सन्तुष्ट होने पर क्या अप्राप्य रहता है अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो जाता है ।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥
(भा० ५।१९।२७)

यद्यपि भगवान् श्रीहरि प्रार्थित होने पर मनुष्यों द्वारा अभिलषित द्रव्य यथार्थ रूपसे ही प्रदान करते हैं, किन्तु वे उन्हें परमार्थ प्रदान नहीं करते, जो उनका वास्तविक दान है। क्योंकि भोगके अन्त में वे पुनः भगवानसे प्रार्थना करेंगे । भगवान अपने भक्तोंद्वारा कुछ भी कामना नहीं किये जाने पर भी वे स्वयं ही उनके सर्वकामपरिपूरक अपना पादपद्म प्रदान करते हैं। श्रीधर टीका)

भगवान् केवलमात्र प्रार्थित द्रव्य देकर निवृत्त नहीं होते । क्योंकि कामके उपभोग से काम प्रशमित न होकर और भी वृद्धि प्राप्त होता है। इसलिए परम कारुणिक परमेश्वर, जो लोग उनके पादपद्मका माधुर्य न जानकर उसे प्राप्त करनेके लिये अधिक इच्छा या आग्रहविशिष्ट नहीं होते, भजनरत उन्हें उनकी समस्त इच्छाओंके परिपूरक अपना पादपद्म प्रदान करते हैं।

उदाहरणके लिए माता मिट्टी खानेवाले बालकके मुखसे मिट्टी निकालकर उसके बदले मुखमें मिठाई प्रदान करती है, उसी प्रकार अकाम या सर्वकाम होकर तीव्र भक्तियोग द्वारा परम पुरुष श्रीहरिकी

आराधना करनी चाहिए"– इस वाक्यमें भक्तिका तीव्रत्व कहा गया है।

भगवद्भक्ति स्वतन्त्र रूपसे (कर्म, ज्ञान, योगादिरहित होकर) अनुष्ठित होने पर भी धर्मार्थकाममोक्ष प्रदान करनेमें समर्थ है। भक्ति केवल धर्मार्थकामादि फल प्रदान कर निवृत्त नहीं होती । बल्कि चरम अवस्थामें परावस्था प्राप्त कर परम फलरूप भगवत्प्रेम प्रदान करती है । अतएव परम कल्याण-रूपिणी होनेके कारण भक्तिका ही अभिधेयत्व है। गरुड़ पुराणमें कहा गया है—

यद्दुर्लभं यदप्राप्यं मनसो यन्न गोचरम् ।
तदप्यप्रार्थितं ध्यातो ददाति मधुसूदनः ॥

अर्थात् जो दुर्लभ एवं अप्राप्य है, मनके भी अगोचर है, मधुसूदन कृष्णका ध्यान कर ऐसी कोई वस्तु प्रार्थना करने पर वे उसे प्रदान कर सकते हैं।

व्यतिरेक रूपसे कर्मका अनादर कर फल प्राप्तिके विषयमें कर्मकी अनिश्चितताके कारण उसका दुःखरूपत्व एवं अनावश्यकता दिखलाकर भक्तिकी ही फलप्राप्ति विषयमें सुखरूपता और आवश्यकता कह रहे हैं—

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥
(भा० १ । १८ । १२)

अनिश्चित एवं अनित्य फलजनक इस यज्ञानुष्ठानरूप कर्मकाण्डकी धूमराशिमें हमारा देह धूम्रवर्ण अर्थात् विवर्ण हो गया है। आप कृपा कर हमें श्रीगोविन्द-पादपद्म-मकरन्द-सुधा पान करा रहे हैं।

बहुत विघ्न रहनेके कारण कृषि कार्यमें जिस प्रकार फलप्राप्तिकी निश्चयता नहीं रहती, उसी प्रकार कर्मके फलप्राप्ति विषयमें संशय रहनेके कारण वह निर्भरता करने योग्य नहीं है। किन्तु भक्तिके साधन और फल दोनोंमें निश्चयता होनेके कारण वह निर्भर-योग्य है।

ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें श्रीशिवके प्रति भगवान्‌ने कहा है—

यदि मां प्राप्तुमिच्छन्ति प्राप्नुवन्त्येव नान्यथा ।
कलौ कलुषचित्तानां वृथायुः प्रभृतीनि च ।
भवन्ति वर्णाश्रमिणां न तु मच्छरणार्थिनाम् ॥

जो व्यक्ति मुझे ही प्राप्त करना चाहते हैं, वे लोग मुझे ही प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत नहीं होता । कलिकालमें कलुषित-चित्त वर्णाश्रमियोंके ही आयु आदि जीवन-धारण वृथा है, किन्तु मेरे शरणार्थी व्यक्तियोंका जीवन-धारण निरर्थक नहीं होता।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥

वर्णाश्रम-धर्म परित्याग कर यदि कोई श्रीहरि-पादपद्म भजन करते हुए अपक्व (असिद्ध) अवस्थामें पतित हो, भजन-त्याग या मृत्यु हो जाय, तो भी उससे कुछ भी अमंगल नहीं होता। किन्तु भगवद्भजनहीन व्यक्तिके वर्णाश्रम धर्म-याजनसे विशेष फल नहीं मिलता।

अतएव प्रह्लादकी उक्ति है—

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थं-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥
(भा० ७ । ९ । १०)

श्रीकृष्ण पादपद्मसे विमुख द्वादश गुणयुक्त

ब्राह्मण अपेक्षा भी भगवानमें मन, वाक्य, प्राण और चेष्टादि समर्पित चण्डालकुलोद्भुत व्यक्तिको मैं श्रेष्ठ समझता हूँ । क्योंकि भक्त-चण्डाल निज-कुलको पवित्र कर देते हैं, किन्तु गर्वसे मदमत्त ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र करनेमें समर्थ नहीं है ।

धन, सत्कुलमें जन्म, सौन्दर्य, तपस्या, पाण्डित्य, इन्द्रियनैपुण्य, कान्ति, प्रताप, शारीरिक बल, उद्यम, प्रज्ञा और अष्टांग योग आदि द्वादश गुण ब्राह्मणके भागवतमें कहे गये हैं । महाभारतमें धर्म, सत्य, दम, तपस्या, ईर्ष्याराहित्य, लज्जा, सहिष्णुता, द्वेषराहित्य, यज्ञ, दान, धैर्य और शास्त्रज्ञान—ब्राह्मणके ये बारह गुण कहे गये हैं ।

कुलाचारविहीनोऽपि दृढभक्तिर्जितेन्द्रियः ।
प्रशस्त सर्वलोकानां न त्वष्टादशविद्यकः ।
भक्तिहीनो द्विजः शान्तः सज्जातिर्धार्मिकस्तथा ॥

(स्कन्द-पुराण, नारद वाक्य)

जितेन्द्रिय एवं भगवान्‌में दृढ़ भक्तिविशिष्ट व्यक्ति सत्कुल एवं सदाचाररहित होने पर भी सर्वलोकश्रेष्ठ है । किन्तु अष्टादश विद्या विशिष्ट, शान्त, सत्कुलोत्पन्न धार्मिक होने पर भी भगवद्भक्तिरहित ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं है ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥

(स्कन्द-पुराण, काशीखण्ड)

ब्राह्मण ही हो, क्षत्रिय ही हो, वैश्य ही हो, शूद्र ही हो या तदितर अन्त्यज ही क्यों न हो, विष्णुभक्तिसंयुक्त होनेपर उन्हें सर्वोत्तमसे भी उत्तम जानना होगा ।

विष्णुभक्तिविहीना ये चण्डालाः परिकीर्त्तिताः ।
चाण्डाला अपि ते श्रेष्ठा हरिभक्तिपरायणाः ॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

जो व्यक्ति विष्णुभक्तिरहित हैं, वे ही 'चण्डाल' हैं । जो लोग हरिभक्तिपरायण हैं, वे लोग चण्डाल कुलोत्पन्न होने पर भी श्रेष्ठ हैं ।

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णोर्भक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णुभक्तिविहीनो यो द्विजातिः श्वपचाधिकः ॥

हे महाराज ! विष्णु भक्त श्वपच कुलोत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है । ब्राह्मण या द्विजाति होकर भी विष्णुभक्तिरहित होने पर चण्डालको अपेक्षा भी हीन है ।

किरात हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुक्कशा
आभीर-शुम्भा-यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

(भा० २ । ४ । १८)

किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, कङ्क, यवन, खस आदि जो लोग जातिगत पापद्वारा दूषित हैं एवं अपर जो सभी व्यक्ति कर्मके कारण पापाचारी जैसे देखे जाते हैं, वे लोग भी शुद्धभक्तोंके चरणाश्रयमात्रसे ही इस जातिगत और कर्मगत पापसे शुद्धि प्राप्त करते हैं, ऐसे स्वाभाविक प्रभावशाली श्रीहरिको नमस्कार करते हैं ।

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां
धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं
विमुखा ये त्वदोक्षजे ॥

(भा० १० । २३ । ४०)

कर्मी याज्ञिक विप्रोंने भक्तिहीनताके लिए आक्षेप कर कहा था—जो लोग अधोक्षज श्रीहरिसे विमुख हैं, उन लोगोंका शौक्र, सावित्र और दैक्ष्य—ये तीनों जन्म आदि, व्रत, बहुदर्शिता, कुल और क्रियाकुशलता

आदिको धिक्कार है अर्थात् त्रिविध जन्म होनेपर भी भक्ति न रहने से सब कुछ व्यर्थ है।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥
(भगवद्गीता १२ । ८-११)

भक्तिप्रधान धर्म ही अनुष्ठान करने योग्य है। अतएव सर्वक्षण एकाग्र चित्तसे भक्तवत्सल भगवानका श्रवण, कीर्त्तन, मनन आदि करना चाहिए। भगवानमें समर्पित कर्मका भी अनादरपूर्वक केवल भक्ति ही करनी चाहिए। केवला-भक्ति करनेमें असमर्थ होने पर ही भगवानमें कर्मार्पण विधेय है—धनंजय ! मेरे नित्यस्वरूपमें मनको स्थिर कर मेरा स्मरण करो, तुम्हारी विवेकवती बुद्धि को मुझमें नियुक्त करो । मुझ भगवत्तत्त्वमें अवस्थित हो जाओ। ऐसा होनेपर उस साधन भक्तिके सर्वोच्च फल निरुपाधिक प्रेम प्राप्त करोगे। यदि सहज अनुराग द्वारा मुझमें चित्त स्थिर करनेमें असमर्थ हो, तब मेरे कर्मपरायण हो जाओ। उससे भी सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। यदि मेरे कर्माचरणमें भी असमर्थ हो, तब संयतचित्त होकर सर्वकर्म फल परित्याग पूर्वक वैदिक कर्मका अनुष्ठान करो ।

इस विषयमें पद्मपुराणोक्त कार्तिक-माहात्म्य सम्बन्धीय एक इतिहास आलोचनीय है—

विष्णुदास नामक शुद्ध अर्चन करनेवाले एक ब्राह्मण थे। एक समय चोल राजाने इस ब्राह्मणके साथ स्पर्द्धा कर किनकी पहले भगवत्प्राप्ति होगी, इस विषयमें उत्सुक होकर बहुत यज्ञादि अनुष्ठान किये थे । किन्तु उन ब्राह्मणकी ही भगवत्प्राप्ति दर्शन की, स्वयं भगवानको प्राप्त नहीं कर पाये । तब वे समस्त कर्म परित्याग कर मुदगलजीसे बोले—"मैंने स्पर्द्धापूर्वक यज्ञादिका अनुष्ठान किया था; अतएव मुझे कोई फल नहीं मिला। विष्णुदास सारूप्य प्राप्त कर वैकुण्ठ जा रहे है। अतएव यज्ञ या दानसे भगवान प्रसन्न नहीं होते, केवल भक्तिसे ही उनकी प्रसन्नता होती है। इसके पश्चात् राजाने होमकुण्डके सम्मुख खड़े होकर कहा—"भगवान विष्णु मेरे कार्यमनोवाक्यमें अचला भक्ति प्रदान करें।" ऐसा कहकर राजाने होमकुण्डमें देहत्याग कर परवर्ति कालमें भगवानको प्राप्त किया था।

इस प्रकार योगका भी अनादर कर केवला भक्तिकी बात कही गई है—

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते क्वचिदुत्थितम् ॥
(भा० १०।५१।६०)

हे राजन् ! अभक्त योगी लोग प्राणायामादि द्वारा मनको संयमित करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी वासनाओं का नाश न होने के कारण कभी-कभी उनके चित्तको विषयोंकी ओर पुनः दौड़ते हुए देखा जाता है।

यमादिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।
मुकुन्दसेवया यद्वत् तथाद्धात्मा न शाम्यति ॥
(भा० १।६।३०)

पुनः पुनः कामलोभादिके वशीभूत चित्त जिस प्रकार मुकुन्दकी सेवा द्वारा साक्षात् रूपसे शान्त होता है, उस प्रकार यमादि योगपथ द्वारा शमता या शान्ति प्राप्त नहीं करता।

इसके पश्चात् ज्ञानका भी अनादर कर रहे हैं—

पानेन ते देव कथासुधायाः
प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं
यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥
(भा० ३।५।६)

हे देव ! तुम्हारी कथारूप सुधापान एवं अत्यन्त तीव्र भक्ति द्वारा जिन व्यक्तियोंका चित्त या अंतःकरण निर्मल हो जाता है, वे लोग वैराग्यके सार ज्ञानको प्राप्त कर जिस प्रकार अनायास ही वैकुण्ठ चले जाते हैं, उसी प्रकार सभी ज्ञानी लोग आत्मसमाधिके बलपर दुष्पारा प्रकृतिको जय कर ब्रह्ममें लीन होने जाकर विपुल परिश्रम मात्र आवाहन का करते हैं। किन्तु तुम्हारे सेवापरायण भक्त लोगोंको वैसा परिश्रम नहीं करना पड़ता ।

श्रीनृसिंह पुराणमें भी कहा गया है—

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-
ष्वकीतलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्तैकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्तौ किमर्थं क्रियते प्रयत्नः ॥

जब सर्वदा ही पत्र, पुष्प, जल, फल, बिना मूल्यसे लभ्य उपकरण समूह विद्यमान हैं एवं पुराणपुरुष भगवान् भी जब भक्तिलभ्यरूपसे ही वर्त्तमान है, तब मनुष्य लोग इन सभी उपकरणोंसे भगवान्की सेवा न कर किस लिए मुक्तिको पानेकी चेष्टा करते हैं ?

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीकृष्णका असीम भक्तवात्सल्य

गोविन्द प्रीति सबनि की मानत ।
जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा, अंतर की गति जानत ॥
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई ॥
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत-भाई ॥
संतत भक्त-मीत हितकारी स्याम बिदुर कै आए ।
प्रेम बिकत, अति आनन्द उर धरि, कदली-छिकुला खाए ॥
कौरव काज चले रिषि सापन, साक पत्र सु अघाए ।
सूरदास करुना-निधान प्रभु, जुग जुग भक्त बढ़ाए ॥
(सूरदासजी)

प्रचार-प्रसंग

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव

गत ७ आषाढ़, २२ जून, मंगलवारको समितिके मूल मठ और सभी शाखा मठोंमें वर्त्तमान शताब्दीकी भक्ति-गंगाके एकमात्र भगीरथस्वरूप जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव हरिकीर्त्तनके माध्यमसे बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया है । उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सबेरे तथा शामको श्रीश्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर रचित कीर्त्तनों एवं पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्त्तन किया गया एवं उनकी अप्राकृत शिक्षाओं एवं अलौकिक जीवनी पर बड़े ही मार्मिक रूपसे आलोचना की गई ।

श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीका रथयात्रा महोत्सव

समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप तथा शाखा मठ, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुँडामें गत ८ आषाढ़, २३ जून बुधवारसे लेकर १७ आषाढ़, २ जुलाई शुक्रवार तक श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीका रथयात्रा-महोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ । ८ आषाढ़को गुण्डिचा-मार्जन, १३ आषाढ़को श्रीलक्ष्मीविजय या हेरा-पञ्चमी, एवं १७ आषाढ़को पूर्ण रथयात्राके महोत्सव सम्पन्न हुए । श्रीधाम नवद्वीपमें उत्सवादिमें आयोजित सभाओंमें समितिके उप-सभापति पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, अन्यान्य ब्रह्मचारी, एवं त्रिदण्डि संन्यासी महोदय आदियोंने भाषण, प्रवचन, कीर्त्तनादि किये । चुचुँडामें समितिके प्रधान सम्पादक पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी अध्यक्षतामें उत्सवादिका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ । दोनों मठोंमें निमन्त्रित-अनिमन्त्रित असंख्य व्यक्तियोंको विविध प्रकारके सुस्वादु महाप्रसादका सेवन कराया गया ।

श्रील सनातन गोस्वामीका तिरोभाव-महोत्सव

गत २३ आषाढ, ८ जुलाई, बृहस्पतिवारको श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके सम्बन्ध-तत्त्वाचार्य, श्रीगौर-पार्षदप्रवर श्रीश्रील सनातन गोस्वामीपादका तिरोभाव-महोत्सव समितिके सभी मठोंमें परम आदर और यत्नके साथ मनाया गया है । श्रीव्रजमण्डलमें इस दिन विराट् महोत्सवादि सम्पन्न होते हैं । समितिके सभी मठोंमें उक्त दिवस आयोजित विशेष सभाओंमें परमाराध्यतम श्रीश्रील सनातन गोस्वामीपादकी अप्राकृत शिक्षाओं एवं अलौकिक जीवन-चरित्र पर विशद एवं मार्मिक आलोचना की गई । इसी दिन समितिके सदस्यवर्ग चातुर्मास्यका व्रत प्रारम्भ करते हैं ।

—निजस्व संवाददाता